दस धर्म

उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्य-ब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥ ६ ॥

अर्थ - [**उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि**] उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिञ्चन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य - ये दस [**धर्मः**] धर्म हैं।

टीका - **१. प्रश्न** - ये दस प्रकार के धर्म किसलिए कहे ?

उत्तर - प्रवृत्ति को रोकने के लिये प्रथम गुप्ति बतलायी, उस गुप्ति में प्रवृत्ति करने में जब जीव असमर्थ होता है, तब प्रवृत्ति का उपाय करने के लिये समिति कही है। इस समिति में प्रवर्तनेवाले मुनि को प्रमाद दूर करने के लिये ये दस प्रकार के धर्म बतलाये हैं।

२- इस सूत्र में बतलाया गया 'उत्तम' शब्द क्षमा आदि दसों धर्मों में लागू होता है; वह गुणवाचक शब्द है। उत्तम क्षमादि कहने से यहाँ रागरूप क्षमा न लेना किन्तु स्वरूप की प्रतीति सहित क्रोधादि कषाय के अभावरूप क्षमा समझना। उत्तम क्षमादि गुण प्रगट होने पर क्रोधादि कषाय का अभाव होता है, उसी से आस्रव की निवृत्ति होती है अर्थात् संवर होता है।

३- धर्म का स्वरूप और उस सम्बन्धी होनेवाली भूल

जिसमें न राग-द्वेष है, न पुण्य है, न कषाय है, न न्यून-अपूर्ण है और न विकारित्व है, ऐसे पूर्ण वीतराग ज्ञायकमात्र एकरूप स्वभाव की जो प्रतीति-लक्ष्य-ज्ञान और उसमें स्थिर होना, सो सच्चा धर्म है। यह वीतराग की आज्ञा है।

बहुत से जीव ऐसा मानते हैं कि बंधादिक के भय से अथवा स्वर्ग मोक्ष की इच्छा से क्रोधादि न करना, सो धर्म है। परन्तु उनकी यह मान्यता मिथ्या है - असत् है, क्योंकि उनके क्रोधादि करने का अभिप्राय तो दूर नहीं हुआ। जैसे - कोई मनुष्य राजादिक के भय से या महन्तपन के लोभ से परस्त्री सेवन नहीं करता तो इस कारण से उसे त्यागी नहीं कहा जा सकता; इसी प्रकार से उपरोक्त मान्यतावाले जीव भी क्रोधादिक के त्यागी नहीं हैं और न उनके धर्म होता है। *(मोक्षमार्गप्रकाशक)*

प्रश्न - तो क्रोधादिक का त्याग किस तरह होता है ?

उत्तर - पदार्थ के इष्ट-अनिष्ट मालूम होने पर क्रोधादिक होते हैं। तत्त्वज्ञान के

अभ्यास से जब कोई पदार्थ इष्ट–अनिष्ट मालूम न हो, तब क्रोधादिक स्वयं उत्पन्न नहीं होते और तभी यथार्थ धर्म होता है।

४– क्षमादिक की व्याख्या निम्न प्रकार है –

(१) क्षमा – निन्दा, गाली, हास्य, अनादर, मारना, शरीर का घात करना आदि होने पर अथवा ऐसे प्रसङ्गों को निकट आते देखकर भावों में मलिनता न होना, सो क्षमा है।

(२) मार्दव – जाति आदि आठ प्रकार के मद के आवेश से होनेवाले अभिमान का अभाव, सो मार्दव है; अथवा मैं परद्रव्य का कुछ भी कर सकता हूँ – ऐसी मान्यतारूप अहङ्कारभाव को जड़मूल से उखाड़ देना, सो मार्दव है।

(३) आर्जव – माया–कपट से रहितपन, सरलता–सीधापन को आर्जव कहते हैं।

(४) शौच – लोभ से उत्कृष्टरूप से उपराम पाना–निवृत्त होना, सो शौच–पवित्रता है।

(५) सत्य – सत् जीवों में–प्रशंसनीय जीवों में साधु–वचन (सरल वचन) बोलने का जो भाव है, सो सत्य है।

प्रश्न – उत्तम सत्य और भाषा–समिति में क्या अन्तर है?

उत्तर – समितिरूप में प्रवर्तनेवाले मुनि के साधु और असाधु पुरुषों के प्रति वचन–व्यवहार होता है और वह हित, परिमित वचन है। उन मुनि को शिष्यों तथा उनके भक्तों (श्रावकों) में उत्तम सत्य ज्ञान, चारित्र के लक्षणादिक सीखने–सिखाने में अधिक भाषाव्यवहार करना पड़ता है, उसे उत्तम सत्यधर्म कहा जाता है।

(६) संयम – समिति में प्रवर्तनेवाले मुनि के प्राणियों को पीड़ा न पहुँचाने–करने का जो भाव है, सो संयम है।

(७) तप – भावकर्म का नाश करने के लिये स्व की शुद्धता के प्रतपन को तप कहते हैं।

(८) त्याग – संयमी जीवों को योग्य ज्ञानादिक देना, सो त्याग है।

(९) आकिञ्चन्य – विद्यमान शरीरादिक में भी संस्कार के त्याग के लिये 'यह मेरा है' ऐसे अनुराग की निवृत्ति को आकिञ्चन्य कहते हैं। आत्मा के स्वरूप से भिन्न ऐसे शरीरादिक में या रागादिक में ममत्वरूप परिणामों के अभाव को आकिञ्चन्य कहते हैं।

(१०) ब्रह्मचर्य – स्त्रीमात्र का त्याग कर, अपने आत्मस्वरूप में लीन रहना ब्रह्मचर्य

है। पूर्व में भोगे हुए स्त्रियों के भोग का स्मरण तथा उनकी कथा सुनने के त्याग से तथा स्त्रियों के पास बैठने के छोड़ने से और स्वच्छन्द प्रवृत्ति रोकने के लिये गुरुकुल में रहने से पूर्णरूपेण ब्रह्मचर्य पलता है। इन दसों शब्दों में 'उत्तम' शब्द जोड़ने से 'उत्तम क्षमा' आदि दस धर्म होते हैं। उत्तम क्षमा आदि कहने से उसे शुभरागरूप न समझना, किन्तु कषायरहित शुद्धभावरूप समझना। *(सर्वार्थसिद्धि ११६ टीका)*

४- दस प्रकार के धर्मों का वर्णन

क्षमा के निम्न प्रकार ५ भेद हैं—(१) जैसे स्वयं निर्बल होने पर सबल का विरोध नहीं करता, उसी प्रकार 'यदि मैं क्षमा करूँ तो मुझे कोई परेशान न करेगा' ऐसे भाव से क्षमा रखना। इस क्षमा में ऐसी प्रतीति नहीं हुई कि 'मैं क्रोधरहित ज्ञायक ऐसे त्रिकाल स्वभाव से शुद्ध हूँ' किन्तु प्रतिकूलता के भयवश सहन करने का राग हुआ, इसलिए वह यथार्थ क्षमा नहीं है, धर्म नहीं है।

(२) यदि मैं क्षमा करूँ तो दूसरी तरफ से मुझे नुकसान न हो किन्तु लाभ हो – ऐसे भाव से सेठ आदि के उलाहने को सहन करे, प्रत्यक्ष में क्रोध न करे, किन्तु वह यथार्थ क्षमा नहीं है, धर्म नहीं है।

(३) यदि मैं क्षमा करूँ तो कर्मबन्धन रुक जायेगा, क्रोध करने से नीच गति में जाना पड़ेगा; इसलिए क्रोध न करूँ – ऐसे भाव से क्षमा करे, किन्तु यह भी सच्ची क्षमा नहीं है, यह धर्म नहीं है, क्योंकि उसमें भय है, किन्तु नित्य ज्ञातास्वरूप की निर्भयता-निःसन्देहता नहीं है।

(४) ऐसी वीतराग की आज्ञा है कि क्रोधादि नहीं करना। इसी प्रकार शास्त्र में कहा है, इसलिए मुझे क्षमा रखना चाहिए, जिससे मुझे पाप नहीं लगेगा और लाभ होगा – ऐसे भाव से शुभपरिणाम रखे और उसे वीतराग की आज्ञा माने किन्तु यह यथार्थ क्षमा नहीं है; क्योंकि यह पराधीन क्षमा है, यह धर्म नहीं है।

(५) 'सच्ची क्षमा' अर्थात् 'उत्तम क्षमा' का स्वरूप यह है कि आत्मा अविनाशी, अबन्ध, निर्मल, ज्ञायक है, उसके स्वभाव में शुभाशुभपरिणाम का कर्तृत्व भी नहीं है। स्वयं जैसा है, वैसा स्व को जानकर, मानकर उसमें ज्ञाता रहना-स्थिर होना, सो वीतराग की आज्ञा है और यह धर्म है। यह पाँचवीं क्षमा क्रोध में युक्त न होना, क्रोध का भी ज्ञाता – ऐसा सहज अकषाय क्षमास्वरूप निजस्वभाव है। इस प्रकार निर्मल विवेक की जागृति द्वारा शुद्धस्वरूप में सावधान रहना, सो उत्तम क्षमा है।